श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास २

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

नमिउण स्तव (चालु)

पज्जलिआनलनयणं दुरवियारियमुहं महाकायं;
नहकु लिसधायविअलिअ, गइंदकुं भत्थलाभोअं. १२
पणयससंभम पत्थिव, नहमणि माणिक्कपडिअ पडिमस्स;
तुह वयणपहरणधरा, सीहं कुद्धंपि न गणंति, १३
ससिधवल दंतमुसल, दीह करुलाल वुड्ढि उच्छाहं;
महुपिंग नयणजुअलं, ससलिल नव जलहरारावं. १४
भीमं महागईंदं, अच्चासन्नंपि ते नवि गणंति;
जे तुम्ह चलणजुअलं, मुणिवई तुंगं समल्लिणा. १५

-: शब्दार्थ :-

पज्जलिय - प्रज्वलित
अनलनयणं - अग्नि जैसे नेत्रवाले
दुर - अत्यंत
वियारिय - फाडा है
मुहं - मुख
महाकायं - बडी काया वाले
नह कुलिस - नाखुनरुपी वज्र के
घाय - घात से
विअलिअ - भेदा है
गइंद - गजेंद्र के
कुंभत्थल - कुंभस्थल के
आभोअं - विस्तार
पणय - झुके हुए
ससंभम - संभ्रम सहित
पत्थिव - राजाओ के
नहमणि माणिक्क - नखरुप मणि माणेक
पडिअ पडिमस्स - जिनके प्रतिबिंब में पडे हैं
तुह - तुम्हारे
वयण - वचन
पहरण - शस्त्रो को
धरा - धारण करने वाले
सीहं - सिंह को
कुद्धंपि - क्रोधित
न - नहीं
गणंति - गिनते
ससिधवल - चंद्र जैसे सफेद
दंतमूसल - जिनके दंतशूल
दीह - लंबी
कर - सूंढ
उल्लाल - उछालने से
वुड्ढि - वृद्धि
उच्छाहं - उत्साह
महुपिंग - मधु जैसे पीले
नयण जुअलं - दो नेत्र वाले
ससलिल - जल सहित
नव जलहर - नये मेघ जैसे
आसव - शब्द वाले
भीमं - भयंकर
महा गइंदं - बडे गजेंद्र को
अच्चासन्नं - अति नजदीक आने वाले को
नवि - नहीं
गणंति - गिनते है
तुम्ह चलण जुअलं - तुम्हारे दोनों चरण
मुणिवई - हे मुनिपति
तुंगं - ऊंचे
समल्लिणा - अच्छी तरह आश्रित हुए हैं

गाथार्थ : प्रणाम करते आदर सहित राजाओ के नखरुप मणि माणेक में जिनका प्रतिबिंब पडता है, ऐसे तुम्हारे वचन रुप शस्त्रो को धारण करने वाले पुरुष, प्रज्वलित अग्नि जैसे नेत्रवाले जिसने अत्यंत मुख फाडा है, ऐसे महाकाय और जिसने नखरुपी वज्र के घात से गजेन्द्र के कुंभस्थल के विस्तार को विदारा है, ऐसे क्रोधित सिंह को भी नहीं गिनते.....१२/१३

हे मुनिपति ! जो तुम्हारे उत्तम चरण युगल के अच्छी तरह आश्रित हुए हैं, वे चंद्र जैसे सफेद दंतशूल वाले, लंबी सूंढ को उछालने से जिनका उत्साह वृद्धि पाया है, मध (शहद) जैसे पीले दो नेत्रवाले, जल से भरे नये मेघ जैसे शब्दो वाले भयंकर बडे गजेंद्र भी अति नजदीक आया हो तो भी उसे गिनते नहीं.....१४/१५

समरंभि तिक्खखग्गाभिधायपविद्धुद्धुयकबंधे;
कुंत विणिभिन्न करिकलह, मुक्कसिक्कार पउरंमि.....१६
निज्जिय दप्पुद्धर रिउ, नरिंदनिवहा भडा जसं धवलं;
पावंति पावपसमिण, पासजिणतुह प्पभावेण.....१७
रोगजल जलण विसहर, चोरारिमंइद गय रणभयाईं;
पासजिण नाम संकित्तणेण पसमंति सव्वाईं.....१८

-: शब्दार्थ :-

समरम्मि - संग्राम में
तिक्ख - तीक्ष्ण
खग्ग - खडग / तलवार
अभिघाय - प्रहार से
पविद्धु - छेदे हुए
उद्धुय - नाचते
कबंधे - बिना सिर के धड/शरीर
कुंत - भाला
विणिभिन्न - भेदा हुआ
करिकलह - हाथी के बच्चों के
मुक्क सिक्कार - किये गये चित्कार से
पउरंमि - व्याप्त
निज्जिय - जीता है
दप्पुधर - गर्व से उन्मत्त
रिउ नरिंद - शत्रु राजाओ के
निवहा - समुह
भडा - सुभट / सैनिक
जसं - यश
धवलं - सफेद
पावंति - पाते हैं
पाव - पाप का
पसमिण - शमन करने वाला
तुह - तुम्हारे
प्पभावेण - प्रभाव से
रोग - रोग
जल - जल / पानी
जलण - अग्नि
विसहर - सर्प
चोर - चोर
अरि - शत्रु
मइंद - सिंह
गय - हाथी
रण - रण / युद्ध
भयाइं - भय
पासजिण - पार्श्वजिन के
नाम - नाम
संकित्तणेण - अच्छी तरह किये गये कीर्तन से
पसमंति - शांति पाते है
सव्वाइं - सर्व

गाथार्थ :- पाप का शमन करने वाले हे पार्श्वजिन ! तुम्हारे प्रभाव से जिसने गर्विष्ठ शत्रु राजाओं के समुह को जीता है, तीक्ष्ण खडग (तलवार) के प्रहार से मस्तक कट जाने से नाचते हैं, शरीर जिसमें तथा भाले से भेदे गये हाथी के बच्चों की चित्कार से व्याप्त रणसंग्राम में ऐसे सुभट उज्वल यश को पाते हैं। १६/१७

रोग, पानी, अग्नि, सर्प, चोर, शत्रु, सिंह, हाथी तथा रणसंग्राम ये सभी भय श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर के नाम का किर्तन करने से शांत हो जाते हैं, शम जाते हैं।.....१८

जिनशासन के प्रभावक आचार्य भगवंत

निर्युक्तिकार

(४) श्री भद्रबाहुस्वामीजी

दक्षिण में थी एक नगरी नाम प्रतिष्ठानपूर.....

वहां बसते थे भद्रबाहु और वराहमिहिर नाम के दो ब्राम्हणकुमार.....

दोनों बंधुओ ने पुज्यपाद श्रीयशोभद्रसूरि की देशना सुनी और सुनते ही वैराग्य जागृत हुआ, दोनों ने दीक्षा ली । दोनों गुरुदेव के पास अभ्यास करने लगे । भद्रबाहु चौदह पूर्व पढ गये इसलीये उन्हें योग्य जान गुरु ने आचार्य पदवी दी, अपने को आचार्य पदवी न मिलने से वराहमिहिर नाराज हो गये, उन्हें भाई की पदवी खटकने लगी..... अंत मे उन्होंने दीक्षा का त्याग किया । वराही संहिता रचकर लोगो को ज्योतिष कहते और अपनी आजिवीका चलाने लगे । अपने आप को ज्योतिषशास्त्र के पारगामी (ज्ञाता) के रुप में परिचय कराने लगे..... जैन धर्म पर द्वेष धारण कर उसकी निंदा करने लगे ।

एक बार वराह मिहिर प्रतिष्ठानपुर के जितशत्रुराजा के पास गये और राजा से कहा '' हे राजन ! तुम्हारे समक्ष चित्रित इस कुंडाकार के मध्य में बावन पल का मत्स्य आकाश में से पडेगा ।''

उसी समय भद्रबाहुस्वामी उसी नगर में विराजमान थे, उन्होंने कहा '' हे राजन ! वो पडने वाला मत्स्य वायु से आधा पल प्रमाण का शोषित हो जाने से साडे एकावन पल का होगा और वो कुंडाकार के मध्य में नहीं अपितु किनारे पर पडेगा ।

फिर वो मत्स्य श्रीभद्रबाहुस्वामी के कहे अनुसार पडा । इससे क्रोध पाया हुआ वराह मिहिर जैनो पर ज्यादा द्वेष करने लगा

एक बार जितशत्रु राजा के यहां पुत्र का जन्म हुआ । सारे नगरजन राजा के पास खुशी व्यक्त कर आये । वराह मिहिर भी सौ वर्ष की आयु होगी ऐसा कह आया । भद्रबाहुस्वामी राजा के पास खुशी व्यक्त करने गये नहीं । जैन ऐसे ही विवेक बिना के है, इस तरह का प्रचार वराहमिहिर करने लगा , राजा के भी कान भरे ।

यह बात जान श्रीभद्रबाहुस्वामी ने राजा को कहलवाया तुम्हारे बालक का आयुष्य सात ही दिन का है, सातवें दिन बालक की मृत्यु बिल्ली से होगी, इससे आप को किस तरह खुशी व्यक्त करें ? ''

यह बात जान राजा ने सारी बिल्लियो को गांव के बाहर करवा दिया तथा बालक को अनेक तरह से रक्षण कराने लगा फिर भी सतावें दिन बिल्ली के आकार की वस्तु दूध पी रहे बालक पर गिरने से बालक की मृत्यु हो गयी तब राजा को बिल्ली वाली बात समझ में आयी, श्रीभद्रबाहुस्वामी की प्रशंसा की, लोगो नें उनकी और जनधर्म की प्रशंसा होने लगी । वराहमिहिर की सर्व स्थानो पर निंदा होने लगी ।

सर्वत्र तिरस्कार पाये हुए वराहमिहिर ने तापसी दीक्षा ली, मरकर व्यंतर हुआ । पूर्वभव के बैर के कारण जैनो पर उपद्रव करने लगा तब जैन संघ के निवेदन करने पर उसके उपद्रवो के निवारण हेतु श्रीभद्रबाहुस्वामी ने ''उवसग्गहरं स्तोत्र'' बनाकर उसका उपयोग करवा कर व्यंतर का उपद्रव शांत किया ।

भद्रबाहुस्वामी ने विशाल साहित्य रचा है, जिनशासन का ज्ञान का खजाना ज्यादा सरल, समृद्ध बनाया है १) दशाश्रुतस्कंध २) बृहत् कल्प एवं ३) व्यवहारश्रुत इन छेद सूत्रो की रचना श्रीभद्रबाहुस्वामी ने की है । आपश्री ने अनेक निर्युक्तियो की रचना की है । इसलीये वे निर्युक्तिकार के रुप में भी प्रसिद्ध है । पर्वाधिराज पर्व के दरम्यान भाव एवं सम्मानपूर्वक पढे जाना ''कल्पसूत्र'' भी उनकी ही रचना है ।

प्राकृतभाषा में ''वसुदेव चरियं'' सवा लाख श्लोक प्रमाण तथा ''भद्रबाहु संहिता'' भी उनकी ही अद्‌भुत रचनाये है जो आज प्रायः उपलब्ध नहीं है ।

श्रीसंभूतिविजयसूरि के पाट पर आये श्रीभद्रबाहुस्वामी पैंतालीस (४५) वर्ष तक गृहस्थरुप में रह, सत्तरह वर्ष तक मुनिरुप में रह चौदह वर्ष तक युगप्रधान आचार्य के रुप में विचरण किया, छिंयोत्तर (७६) वर्ष की पूर्ण आयुष्य भोगकर अपनी पाट पर श्रीस्थूलभद्रसूरि को स्थापित कर वीर निर्वाण से एक सौ सित्तेरवें (१७०) वर्ष में कुमारगिरि पर अनशन कर स्वर्ग में गये ।

प्रभु महावीर स्वामी की पाटपरम्परा निम्न अनुसार है -

१) पहली पाट पर सुधर्मास्वामी है ।

२) दुसरी पाट पर जंबूस्वामी है ।

३) तीसरी पाट पर प्रभवस्वामी है ।

४) चौथी पाट पर शय्यंभवसूरि है ।

५) पांचवी पाट पर यशोभद्रसूरि है ।

६) छट्ठी पाट पर संभूतिविजयसूरि है ।

७) सातवी पाट पर भद्रबाहुस्वामी है ।

यहाँ तक श्वेताम्बर, दिगंबरो की पाट परम्परा समान है, इससे आगे दोनों अलग हो जाते है ।

कामविजेता

(५) श्री स्थूलभद्रसूरि

पाटलीपुत्र नगर मे नववां नंद नामक राजा राज्य करता था.....

इस राजा का गौतम गोत्रवाला, कल्पकमंत्री का वंशज और जैन धर्म का परम भक्त ऐसा शकडाल नामक मंत्री था।

मंत्रीश्वर को लाछलदे नाम की पत्नी थी.....

संसार सुखो को भोगते हुए मंत्रीश्वर को स्थूलभद्र और श्रीयक नाम के दो पुत्र हुए तथा यक्षा,यक्षदिन्ना वगैरह सात पुत्रियां हुई।

स्थूलभद्र कोशा वेश्या पर आसक्त हो बारह वर्ष वहीं पर रहे और उसपर करोडो का व्यय किया.....

पाटलीपुत्र के राजा का ऐसा नियम था की जो कोई भी स्वयं के रचे हुए जितने श्लोक राजसभा में मुझे सुनायेगा उसे उतनी सोनामुहरे मैं दुंगा। उस वक्त वररुचि नामक एक शीघ्रकवि विद्वान ब्राम्हण प्रतिदिन एक सौ आठ नये काव्य बनाकर राजा को राजसभा में सुनाकर एक सौ आठ सोनामुहरे प्राप्त करने लगा। मंत्री ने सोचा की, इस तरह देने से राज खजाना खाली हो जायेगा। मंत्रियो को खाली हो रहे खजाने को युक्ति से बचा लेना चाहिये इसलिये शकडाल मंत्री ने राजा से कहा '' हे राजन ! इस तरह प्रतिदिन सोनामुहरे देकर खजाना खाली करना उचित नहीं है। यह ब्राम्हण तो नये श्लोक सुनाता नहीं है, ये श्लोक तो मेरी साता बेटियो को भी आते हैं।

राजा ने कहा ''मुझे खात्री करके बताओ।''

तब दूसरे दिन सभा में अपनी सातों पुत्रियो को लाकर पर्दे में बिठाया फिर वररुचि ने जो काव्य सुनाये वे सारे काव्य सातो मंत्री पुत्रियो ने कह डाले। इन सातो की बुद्धि ऐसी थी की पहली पुत्री को एक बार सुनने पर कंठस्थ हो जाता, दूसरी को दो बार सुनने पर, इस तरह से सातवीं पुत्री को सात बार सुनने पर कंठस्थ हो जाता था, इसलीये सब बोल गयी। वररुचि इस तरह अपमानित भी हुआ और आवक भी बंद हो गयी। इसलीये क्रोधित हुआ वररुचि शकडाल मंत्री को मारने का उपाय सोचने लगा। एक बार मंत्री शकडाल के यहां उनके पुत्र श्रीयक के विवाह का प्रसंग आया इस प्रसंग पर राजा को भेट देने मंत्री ने अपने घर उच्च कोटि के हथियार तैयार करवाना प्रारंभ किया। इस अवसर का लाभ उठाकर वररुचि ने मिठाई और अन्य वस्तुएं भी देकर नगर के बालको को कहा की नगर की गली गली में बोलते जाओ की यह शकडाल मंत्री नंदराजा को मारकर अपने पुत्र श्रीयक को राजगद्दी पर बैठायेगा। नगर के बालक प्रतिदिन ऊंचे स्वर में बोलने लगे। राजा के कान में ये शब्द पडने पर राजा ने मंत्री के घर गुप्त जांच करवायी तो वहां हथियार बनते देख यह बात सच्ची मानी। दूसरे दिन

मंत्री राजसभा में आकर झुके तो तब राजा ने मुख फेर लिया, इससे चतुर मंत्री समझ गये की, राजा को किसी ने भडकाया है । मंत्री ने घर आकर श्रीयक से कहा की '' कोई दुष्ट से प्रेरित राजा अपने कुटुंब का नाश करेगा इसलीये कुटुंब रक्षा हेतु कल सभा में तू मेरा मस्तक उडा देना ।''

श्रीयक ने कहा पितृहत्या का पाप मैं कैसे कर सकता हूँ ? तब मंत्री ने कहा, एक की मृत्यु से पूरे कुटुंब की रक्षा होती हो तो तुझे ऐसा करना चाहिये । मैं स्वयं तालपुष्ट विष खाकर ही सभा में जाऊंगा इसलीये तुझे पितृहत्या का पाप नहीं लगेगा, श्रीयक ने पितृवचन को माना और दूसरे दिन सुबह राजसभा में पहले गया फिर जब शकडालमंत्री ने राजसभा में आकर नमस्कार करने सिर झुकाया तब उठकर श्रीयक ने मंत्री का सिर काट डाला । राजा ने कहा ''श्रीयक यह तूने क्या किया ? '' श्रीयक ने कहा ''आपका अहित चाहने वाले बाप को भी मार देना चाहिये '' यह सुन खुश हुए राजा ने श्रीयक को मंत्रीपद स्वीकारने को कहा । श्रीयक ने कहा मेरे बडे भाई स्थूलभद्र कोशा वेश्या के यहां है उन्हें आप मंत्रीपद दिजिये ।

राजा ने स्थूलभद्र को बुलाकर मंत्रीपद स्वीकारने को कहा । स्थूलभद्र ने कहा कि, मैं विचार करके जवाब दूंगा । फिर अशोकवाटिका में जाकर स्थूलभद्र ने विचार किया की, यह मंत्रीपद पिता के प्राण लेने वाला हुआ, यह राजकारण एवं संसार दुःख के लिये ही है, ऐसा विचारकर संसार पर से मन उठाकर वैराग्य से वो लोच कर मुनिवेश धारणकर राजसभा में आया । तब राजा ने कहा, **आलोचितं ?** यानि विचार किया ? तब स्थूलभद्र ने कहा, **लोचितं** यानि मैंने तो लोच कर डाला यह सुन राजा वगैरह सभाजनो ने आश्चर्य के अनुभव के साथ वंदन किया ।

स्थूलभद्र मुनि धर्मलाभ देकर वहां से आचार्य श्रीसंभूतिविजयसूरि के पास आकर दीक्षा लेकर ग्यारह अंग पढ लिये और गुरुआज्ञा प्राप्त कर कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास किया । वहां हावभावपूर्वक अनेक तरह के भोगविलास हेतु हल्की चेष्टाये करती एवं ऐसे ही वचन बोलती वेश्या की ऐसी चार मास की प्रवृत्तियो से लेशमात्र भी चलित नहीं होने वाले स्थूलभद्र मुनि ने उस वेश्या को प्रतिबोधित कर बारहव्रतधारी श्राविका बनाया । गुरु के पास आये तब गुरु ने भी ''दुक्कर दुक्कर कारग'' ऐसे मानभरे वचनो से सत्कार किया और संघ के पास भी उनकी प्रशंसा की । सिंहगुफा में गुरु आज्ञा लेकर चातुर्मास करके आने वाले मुनि से यह प्रशंसा सहन नहीं हुई इसलिये उसने कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की मांग की, गुरु ने कहा तुम्हारा काम नहीं है, फिर भी मुनि कोशा वेश्या के यहां गये और चारित्र भावना से पतित हुए । वेश्या ने प्रतिबोध देने नेपाल से रत्नकंबल लाने को कहा । मुनि अनेक कष्ट सहकर वो लाये । वेश्या ने वो कंबल से पैर पोंछ कर गंदे पानी के स्थान पर डाल दिया । मुनि ने कहा,''ऐसी किमती वस्तु को ऐसे कैसे बिगाड रही हो ? यानि ''ऐसे किमती चारित्र को आप कैसे बिगाडने तैयार हुए हो ? वगैरह कह वेश्या ने उन मुनि को प्रतिबोधित किया, इससे वो मनि गुरु के पास आकर प्रायश्चित स्वीकार कर शुद्ध हुए ।

एक बार बारह वर्ष का दुष्काल पडने से जैन मुनिओं को शासन का आधारभूत बारहवां अगं सूत्र दृष्टिवाद विस्मृत होने लगा, बहुतो को ठीक से कंठस्थ रहा नहीं इसलीये उसके अभ्यास की व्यवस्था करने के

लिये श्रीश्रमणसंघ ने नेपाल देश में विचरते श्रीभद्रबाहुस्वामी अकेले ही दृष्टिवाद के जानकार है, उनके पास दो साधुओ को भेजकर उन्हें पाटलीपुत्र आने के लिये कहा तो उन्होंने कहा ''अभी मैंने प्राणायाम नामक ध्यान में प्रवेश किया है, इसलीये अभी पाटलीपुत्र नहीं आ पाऊंगा।'' उन मुनियों ने यह बात वापस आकार श्रमणसंघ को बतायी। इसलीये श्रमणसंघ ने फिर से दो मुनियों को भेजकर भद्रबाहुस्वामी को पुछवाया की ''जो श्रमणसंघ का नहीं माने उसे कौनसी सजा देनी चाहिये ? भद्रबाहुस्वामी ने बताया की ''श्रमणसंघ का नहीं माने उसे संघ से बाहर निकालने का, परंतु श्रीश्रमणसंघ मेरे उपर कृपाकर दृष्टिवाद पढ सके ऐसे बुद्धिमान मुनिवरो को भेज दीजिये। यहां उन्हें मैं वाचना दूंगा जिससे दृष्टिवाद का अभ्यास और प्राणायाम नामक ध्यान कर रहा हुं उसका भी सुखपूर्वक निर्वाह हो सके, इस तरह से ये दोनों शासन के ही कार्य सुगमता से हो पायेंगे। फिर उन दो मुनियो ने संघ के पास जाकर सारी जानकारी बतायी तब श्री श्रमणसंघ ने श्री स्थूलभद्र आदि पांचसौ मुनिवरो को श्रीभद्रबाहुस्वामी के पास भेजा। वे उन्हैं प्रतिदिन सात वाचना देने लगे, कुछ समय बाद स्थूलभद्र के सिवाय अन्य मुनि सात वाचना से उद्विग्न होकर चले गये और स्थूलभद्र मुनि ने दो वस्तु कम ऐसे दस पूर्व का अभ्यास किया। फिर प्राणायाम ध्यान पूर्ण होने पर श्री भद्रबाहुस्वामी स्थूलभद्रमुनि सहित विचरण करते हुए पाटली पुत्र के उद्यान में पधारे तब उन्हें वंदन करने स्थूलभद्रमुनि की दीक्षित हुई यक्षा, यक्षदिन्ना वगैरह सात बहन साध्वीयाँ आयी। श्री भद्रबाहुस्वामी को वंदन कर पूछा की, हमारे भाई मुनि कहाँ है ? आचार्यश्री ने कहा ''पीछे के भाग में है।'' यह सुन वे वहां पर वंदन करने गयी परंतु वहां सिंह नजर आया, इसलीये तुरंत वापस आकर आचार्यश्री को कहा की वहां भाई मुनि नहीं परंतु सिंह है। भद्रबाहुस्वामी ने उपयोग से जाना और कहा की अब तुम जाओ वहां उनके दर्शन होगें फिर वे साध्वीयाँ वहां जाकर वंदन कर आयी। उसके बाद स्थूलभद्र वाचना लेने आये तब विद्या से सिंहरुप बनानेवाले उन्हें, गुरु ने कहां ''तुम सुत्रपाठ के लिये अयोग्य हो।'' ऐसा कह कर पाठ नहीं दिया। स्थूलभद्र मुनि ने पश्चातापपूर्वक क्षमा मांगी व पाठ देने का निवेदन किया परंतु गुरु ने वाचना नहीं दी फिर श्रीश्रमणसंघ ने मिलकर उन्हें निवेदन किया जिससे आचार्यश्री ने अब यह पाठ किसी को नहीं देने की शर्त पर दे रहा हुं, ऐसा कह बाकी के चार पूर्व अर्थ बिना के उन्हें दिये यानि श्रीस्थूलभद्र अंतिम चौदहपूर्वी मूल से हुए।

श्रीस्थूलभद्रस्वामी तीस वर्ष गृहवास में, चौबीस वर्ष मुनिरुप में और पैंतालीस वर्ष युगप्रधान आचार्य के रुप में जगत पर उपकार कर साधिक निन्यानवें वर्ष की अपनी पूरी आयुष्य भोगकर वीर प्रभु के निर्वाण के बाद दो सौ पंद्रहवें वर्ष में वैभारगिरि पर पाक्षिक संलेखनापूर्वक अनशन करके अपनी पाट पर आर्यमहागिरी मुनि को स्थापित कर सौ मुनियो की सेवा पाते हुए भी स्वर्ग में गये।

श्री दंडक प्रकरण - २

श्री गजसार मुनि

१) शरीर २) अवगाहना द्वार

चउ गब्भ तिरिय वाउसु, मणुआणं पंच सेस तिसरीरा ।
थावर चउगे दुहओ, अंगुल असंखभाग तणुं ।।५।।

गर्भज, तिर्यंच और वायुकाय को चार शरीर होते है, मनुष्य को पाँच शरीर और शेष के (२१ दंडक) तीन शरीर होते है । चार स्थावर को (वनस्पतिकाय को छोडकर) दोनो प्रकार से अंगुल के असंख्यात वे भाग का शरीर होता है । प्रथम शरीर द्वार में किस दंडक में कितने शरीर होते है इसकी जानकारी देते हैं ।

गर्भज तिर्यंच और वायुकाय को ४ शरीर अर्थात औदारिक, वैक्रिय, तेजस और कार्मण ऐसे आहारक को छोडकर चार शरीर होते है । मनुष्य को सब पाँचो शरीर होते है ।

शेष इक्कीस दंडक को तीन याने औदारिक अथवा वैक्रिय और तेजस एवं कार्मण शरीर होता है ।

देवताओं के तेरह (१३) और नारकी के एक (१) इन चौदह दंडक में वैक्रिय, तेजस और कार्मण ये तीन शरीर होते है । जबकि पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वनस्पतिकाय, एवं द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरुन्द्रिय इन सात (७) को औदारिक, तैजस एवं कार्मण ये तीन शरीर होते है ।

आधी गाथा में शरीर द्वार समजाकर शेष आधी गाथा में अवगाहना द्वार का प्रारंभ किया है ।

प्रथम स्थावर की अवगाहना बताते हुए कहते है कि, एक वनस्पतिकाय को छोडकर सब पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के शरीर की अवगाहना (उंचाई) दोनो प्रकार से याने जघन्य एवं उत्कृष्ट से अंगुल के असंख्यातवे भाग जितनी होती है ।

२४ दंडको में शरीर

३ शरीर वैक्रिय, तैजस, कार्मण	३ शरीर औदारिक तैजस, कार्मण	४ शरीर औदारिक वैक्रिय, तैजस, कार्मण	५ शरीर औदारिक,वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण
१ नारक १० असुर १ व्यंतर १ ज्योतिष्क १ वैमानिक	१ पृथ्वीकाय १ अप्काय १ तेउकाय १ वनस्पतिकाय ३ विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय)	१ वायुकाय १ गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच	१ गर्भज मनुष्य
कुल १४ +	७ +	२ +	१ = २४ दंडक

(२) अवगाहना द्वार ..... (चालु)

सव्वेसिंपि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्स असंखसो ।
उक्कोस पणसय धणु, नेरइया सत्त हत्थ सुरा ।।६।।

(शेष २० दंडक) सबको जघन्य से स्वाभाविक शरीर अंगुल के असंख्यात वे भाग जितना होता है । उत्कृष्ट से पांचसौ धनुष्य शरीरवाले नारकी होते है और देवताओं का उत्कृष्ट से सात हाथ शरीर होता है ।

अवगाहना द्वार में आगे बढते हुए कहते है की अन्य बीस दंडक के विषय में जघन्य से शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग जितनी होती है, अर्थात् चौबीस के चौबीस दंडकों में शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग जितनी होती है ।

उत्कृष्ट अवगाहना बताते हुए नारकी के दंडक के विषय में ५०० धनुष्य है । जबकि देवताओं के तेरह दंडक के बारे में उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है ।

(२) अवगाहना द्वार..... (चालु)

गब्भ तिरि सहस्स जोयण, वणस्सइ अहिय जोयण सहसं ।
नरतेइंदि ति गाउ, बेइंदिय जोयणे बार ।।७।।
जोयण - मेगं चउरिंदि, देह मुच्चत्तणं भणिअं ।
वेउव्विय देहं पुण, अंगुलसंखंस - मारंभे ।।८।।

गर्भज तिर्यंच का शरीर एक हजार योजन होता है । प्रत्येक वनस्पति का शरीर एक हजार योजन से कुछ अधिक होता है । मनुष्य और तेइन्द्रिय का शरीर तीन गाउ होता है । द्विन्द्रिय का शरीर बारह योजन होता है । एक योजन चउरिन्द्रिय के शरीर की उंचाइ सूत्रानुरुप है । पुनश्च उत्तर वैक्रिय शरीर का आरंभ करते समय अंगुल का असंख्यातवा भाग होता है ।

अवगाहना (मूल शरीर की)

जघन्य से २४ दंडक के विषय में अंगुल के असंख्यातवे भाग जीतनी होती है

उत्कृष्ट अवगाहना

संख्या	दंडक का नाम	अवगाहना
१	नारकी	५०० धनुष्य
१३	देव	७ हाथ
१	गर्भज तिर्यंच	१००० योजन
१	गर्भज मनुष्य	तीन गाऊ
४	पृथ्वीकाय - अपकाय तेउकाय और वायुकाय	अंगुल का असंख्यातवा भाग
१	वनस्पतिकाय	१००० योजन से कुछ अधिक
१	द्विइन्द्रिय	१२ योजन
१	तेइन्द्रिय	३ गाऊ
१	चउरिन्द्रिय	१ योजन
कुल २४		

उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना

देव नर अहिय लक्खं, तिरियाणं नव य जोयण सयाइं ।
दुगुणं तु नारयाणं, भणियं वेउव्विय सरीरं ।।९।।

देवताओं का लाख योजन, मनुष्यों का उससे अधिक, तिर्यंचो का नवसौ योजन, एवं नारकियों का दुगुना वैक्रिय शरीर कहा है । देवताओं के १३ दंडकमें उत्तर वैक्रिय शरीर लाख योजन का होता है । मनुष्य के अेक दंडक में उत्तर वैक्रिय शरीर लाख योजन से चार अंगुल ज्यादा होता है, क्योंकि देव जमीन से चार अंगुल अद्धर होते हैं ।

तिर्यंच के १ दंडक में उत्तर वैक्रिय शरीर ९०० योजन का होता है ।

नारक के एक दंडक में उत्तर वैक्रिय शरीर (दुगुना याने) १००० धनुष होता है ।

वायुकाय के एक दंडक में उत्तर वैक्रिय शरीर अंगुल के असंख्यातवे भाग जितना होता है

कुल दंडक -१७

शेष बचे ७ दंडक में (१. पृथ्वीकाय २) अप्काय ३) तेउकाय ४) वनस्पतिकाय ५) बेइन्द्रिय ६) तेइन्द्रिय ७) चउरेन्द्रिय) को उत्तर वैक्रिय शरीर होता ही नहीं ।

आहारक शरीर की अवगाहना मूठबंद एक हाथ जितनी होती है । तैजस, कार्मण शरीर संपूर्ण आत्मप्रदेशों में व्याप्त होने से जीव के शरीर जितनी अवगाहना होती है ।

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

(३) मिश्र गुणस्थान

द्वितीय सास्वादन गुणस्थान के बाद आता है तीसरा मिश्र गुणस्थान

मिश्रकर्मोदया ज्जीवे सम्यग्मिथ्यात्वमिश्रितः ।
यो भावोंत्तर्मुहूर्त्स्यात्तन्मिश्रस्थान मुच्यतेः ।।१३।।

जीव के विषय में मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के मिलन से जो भाव उत्पन्न होते है और अंतमुहूर्त तक रहते है उसे मिश्रगुणस्थान कहते है ।

जो जीव सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व के एक भाव में प्रवर्तमान है, उसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व हो पर जो जीव उभय भाव में होता है, उसे जात्यंतर तीसरा भाव - मिश्रभाव होता है ।

उदयभाव कैसा होता है वह दृष्टांत से बताते है -

जात्यन्तर समुद्भूति र्वडवा खरयो र्यथा ।
गुड दध्नोः समायोगे रासभेदान्तरं यथा ।।१४।।
तथा धर्मद्वयेश्रद्धा जायते समबुद्धितः ।
मिश्रो सौ भण्यते तस्माद्भावो जात्यन्तरात्मकः ।।१५।।

जिस तरह घोडे और गधे के संयोग से जो उत्पन्न होता है, वह घोडा नहीं कहलाता और गधा भी नहीं कहलाता परंतु वह तीसरी जाति ''खच्चर'' कहलाती है ।

उसी तरह गुड और दही के संयोग से जो उत्पन्न होता है, वह न तो गुड के स्वाद का होता है और न तो दही के स्वाद का होता है । उसमें तीसरा ही रस उत्पन्न होता है जिसे ''शिखरण'' कहते है ।

इन दोनो दृष्टान्तों के समान जिस जीव की श्रद्धा सर्वज्ञ और असर्वज्ञ प्रणीत धर्म के बारे में समान बुद्धि वाली होती है उसे जात्यांतर रुप से मिश्रगुणस्थान कहते है । इस गुणस्थानक की स्थिति अंतर्मुहूर्त की होती है । मिश्र गुणस्थान में रहा हुआ जीव दुसरे भव का आयुष्य नहीं बांधता और मरता भी नहीं है । सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यात्वी बनकर मरता है ।

इस गुणस्थान में ७४ प्रकृतियोंका बंध होता है । उदय और उदीरणा १०० प्रकृति की है, सत्ता में १४७ प्रकृतियाँ होती है ।

मिश्र गुणस्थान की विशेषता

आयुर्बध्नातिनो जीवो मिश्रस्थो म्रियते न वा ।
सद्दृष्टिर्वा कुदृष्टिर्वा, भूत्वा मरणमश्नु ते ।।१६।।

मिश्र गुणस्थान में रहा हुआ जीव आयु बांधता नहीं, और मृत्यु को भी प्राप्त नहीं कर सकता । मृत्युवश होने से पहले वह अवश्य ही चौथे सम्यग् दृष्टि गुणस्थान में अथवा पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में जाता है । वहाँ जाकर मृत्यु को प्राप्त करता है । कोई भी जीव मिश्र गुणस्थान में मरता नहीं है ।

चौदह गुणस्थानों में से मिश्रगुणस्थान, क्षीणमोह गुणस्थान और सयोगी गुणस्थान इन तीन गुणस्थानों में जीव मरता नहीं है । शेष ग्यारह गुणस्थानों में जीव मृत्यु प्राप्त कर सकता है ।

अविरति गुणस्थान, मित्थात्व, गुणस्थान, सास्वादन गुणस्थान ये तीन गुणस्थान परभव में जीव के साथ जाते है । शेष आठ गुणस्थान (कुल मिलाकर ग्यारह गुणस्थान) परभव में साथ चलते नहीं ।

पूर्व बद्धायु मिश्रगुणस्थानस्थ जीव का मरण और गति

सम्यग्मिथ्यात्वयोर्मध्ये, ह्यायुर्येनार्जितं पुरा ।
म्रियते तेन भावेन, गतिं याति तदाश्चिताम् ।।१७।।

मिश्र गुणस्थान की प्राप्ति के पहले जीव या तो मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है अथवा अविरति गुणस्थानक में होता है । वहाँ पर आयुष्य कर्म बाँधा हो उस भाव सहित जीव मरता है और उस भावं के अनुसार सद्गति अथवा दुर्गति में जाता है ।

(४) अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

यायथोक्तेषु च तत्वेषु रुचिर्जीवस्य जायते ।
निसर्गादुपदेशाद्वा सम्यक्त्वं हितदुच्यते ।।१८।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय भव्य जीव की जिन प्रणीत तत्व के बारे में अर्थात् जीवादि पदार्थों के विषय में स्वभाव से अथवा गुरु उपदेश से जो श्रद्धा होती है उसे ''सम्यक्त्व'' कहते है ।

सम्यक्त्व दो प्रकार से -

१) निसर्ग सम्यक्त्व : संज्ञी पंचेन्द्रिय भव्य प्राणी को पुर्वभव के अभ्यास विशेष से अति निर्मल गुणयुक्त आत्मभाव उत्पन्न होने से जीवादि नवतत्वों में श्रद्धा होती है वह ''निसर्ग सम्यक्त्व'' है ।

२) अधिगम सम्यक्त्व् : सद्गुरु के उपदेश से ..... शास्त्रों के श्रवण से जीव-अजीवादि नवतत्व में श्रद्धा होती है, वह **''अधिगम सम्यक्त्व''** है ।

द्वितीयानां कषायाणा-मुदयाद्व्रतवर्जितम् ।
सम्यक्तं केवलं यत्र, तच्चतुर्थं गुणास्पदम् ।।१९।।

दुसरे अप्रत्याख्यानी कषायों के उदय से जीव व्रत-पच्चक्खाण रहित होता है । वहाँ सिर्फ सम्यक्त्व

ही होता है, वह चौथा गुणस्थान कहलाता है । ये जीव अविरति को खराब मानते है, विरती की अतिशय इच्छा रखते है । परंतु अप्रत्याख्यानी कषाय के उदय से व्रत-पच्चक्खाण स्वीकार नहीं कर सकते ।

चौथे गुणस्थान की स्थिति

उत्कृष्टा ऽ स्य त्रयास्त्रिंशत्सागरा साधिका स्थितिः ।
तदर्धपुद्गलावर्त्त भवैर्भव्यैरवाप्य ते ।।२०।।

चौथे गुणस्थानक की स्थिति साधिक तैंतीस सागरोपम कही है । वह सर्वार्थसिद्ध आदि पांच अनुत्तर विमानगत देवों के आयुष्यरुप समझना और मनुष्यभव की अधिकता समझना ।

यह स्थिति सम्यक्त्व की नहीं पर सम्यक्त्व गुणस्थान की है । क्योंकि सम्यक्त्व की स्थिति साधिक छैंसठ सागरोपम है ।

भव्य जीव अर्धपुद्गलपरावर्त संसार बाकी रहता है, तब यह सम्यक्त्व पाता है ।

अभव्य जीवों को यह सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता ।

सम्यक्दृष्टि के लक्षण

कृपाप्रशमसंवेग - निर्वेदास्तिक्य लक्षणाः ।
गुणा भवान्ति यश्चिते, स स्यात्सम्यक्त्वभूषितः ।।२१।।

जिसके चित्त में दया (कृपा), शांतता (प्रशम) संवेग, निर्वेद और आस्तिक्य ये पांच गुण होते है वह सम्यक्त्व से अलंकृत होता है ।

१) कृपा - (दया) दुःखी जीवों का दुःख दूर करने की चिन्ता याने दया (अनुकंपा) ।

२) प्रशम - क्रोधादिक के कारण उत्पन्न होने पर भी तीव्र क्रोध का अभाव, वह उपशम ।

३) संवेग - सिद्धिरुप महल में जाने की लिये सोपान समान सम्यगज्ञानदर्शनादि मार्ग में उत्साहरुप अभिलाष याने संवेग ।

४) निर्वेद - अत्यंत बिभत्स और कुत्सित इस संसाररुप बंदीगृह में से निकलने के चाहनारुप खेद वह निर्वेद ।

५) आस्तिक्य - सर्वज्ञभाषित सर्व भाव निश्चय ''जैसे कहे है वैसे ही है '' इस तरह सर्वज्ञाक्त भावों के अस्तित्व की विचारणा वही है आस्तिक्य ।

अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के उदय से जो देशविरति अथवा सर्वविरतिरुप नहीं है, वहाँ विरति के लिये उत्साह नहीं होता ।

अविरति सम्यगदृष्टि गुणस्थान की स्थिति तैंतीस सागरोपम से कुछ अधिक है ।

हम अनादि काल से चार गति और चौर्यासी लाख जीवोयोनि में भ्रमण कर रहे है । हमारा निस्तार न हुआ । हम संसारसागर को पार न कर सके ।

''क्या होगा इसका कारण ?''

ज्ञानी भगवंत कहते है की मिथ्यात्व जीव को शिव नहीं बनने देता । प्रथम गुणस्थान से आगे बढने ही

नहीं देता । सम्यक्त्व को आने नहीं देता ।

तो फिर प्रश्न है की ''मिथ्यात्व जायेगा कैसे ? '' और सम्यग् दर्शन मिलेगा कैसे ?

कर्म सिद्धांत मिथ्यात्व में से सम्यग् दर्शन प्राप्त करने का व्यवस्थित मार्ग बताता है, यह संपूर्ण मार्ग समझने जैसा है ।

अनंत पुद्गल परावर्तन काल से यह जीव मिथ्यात्व के कारण से संसार में भ्रमण कर रहा है । हर मिथ्यात्वी जीव में कर्मजनित तीव्र राग द्वेष की अति गाढ परिणाम रुप कठीन-वक्र ऐसी बडे कष्ट से जिसका भेदन हो सके ऐसी परंतु पहले कभी जीव ने भेदी न हो ऐसी ग्रंथि-गांठ है ।

भव्य और अभव्य जीव इस ग्रंथि के पास अनंतबार आते है पर सब अभव्य जीव और बहुत भव्य जीव भी यहाँ से वापिस पीछे चले जाते है ।

पहले तो जीव किसी भी प्रयत्न या लक्ष्य के बिना ही नदी, घोल, न्याय से आयुष्य कर्म छोडकर शेष सातों कर्मों की स्थिति एक कोडाकोडी सागरोपम से कम कर डालता है । नदी, घोल न्याय याने नदी में पडा हुआ पत्थर टकराते हुए पानी से घिसते हुए स्वंयमेव गोलमटोल बन जाता है । किसी के प्रयत्न से वह गोल नहीं बनाया जाता, उसी तरह किसी विशेष प्रयत्न के बिना ही संसार में टकराते, ठुकराते, घिसते हुए अकाम निर्जरा से जीव निबीड ग्रंथि के पास आता है, यह यथाप्रवृत्तिकरण है ।

मिथ्यात्वी जीव सम्यगदर्शन प्राप्त करते समय तीन प्रकार की क्रियाअें करता है जो करण के नाम से पहचानी जाती है । ये तीन करण इस प्रकार है - १) यथाप्रवृत्तिकरण २) अपूर्वकरण ३) अनिवृत्तिकरण ।

जब तक तीव्र राग-द्वेष की गांठ-ग्रंथी है तबतक प्रथम ''यथाप्रवृत्तिकरण'' है, आत्मा के विशुद्ध अध्यवसाय के बल से जीव पूर्व में कभी न किया है ऐसा ग्रंथि-भेद का कार्य करता है, वह अपूर्वकरण कहते है । ग्रंथिभेद के बाद तुरंत सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तब जीव को अनिवृत्तिकरण होता है ।

सम्यग्दर्शन प्राप्तिका मार्ग

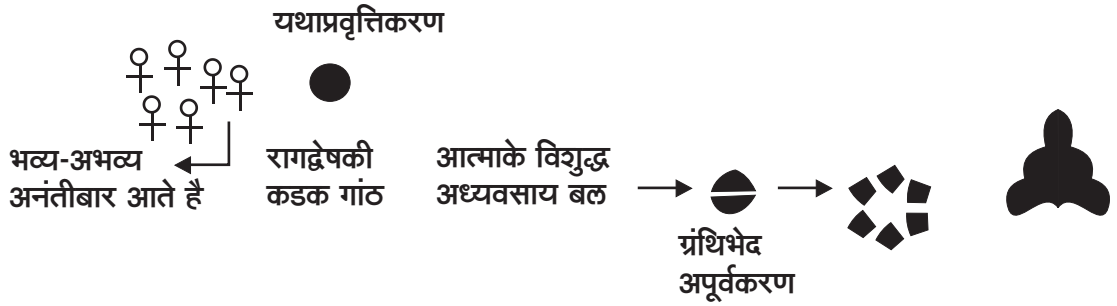

अपूर्वकरण में ग्रंथिभेद होने के बाद अंतर्मुहुर्त प्रमाणवाले अनिवृत्तिकरण का प्रारंभ होता है, अनवृत्तिकरण की पूर्णाहूति होते ही ''उपशम सम्यक्त्व'' की जीव को प्राप्ति होती है ।

अनिवृत्तिकरण अंतुर्मुहूर्त की प्रक्रिया है ।

अनिवृत्तिकरण संख्याता भाग व्यतीत होते है और अंतिम संख्यातवा भाग बाकी रहता है, तब जीव अंतरकरण करता है । अंतरकरण याने मिथ्यात्व के उदय में अंतर-रुकावट खडी करना । इस जीव को सतत मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के पुद्गल उदय में आते है उन्हे उपशमित करने के लिये अंतरकरण करना आवश्यक है, अंतरकरण करने के लिये मिथ्यात्व के तीन विभाग करते है -

१) अंतरकरण पहले के मिथ्यात्व के दलिये और उनकी स्थिति (उपरकी)

२) अंतरकरण करते वक्त दलिये और उनकी स्थिति (बीचकी)

३) अंतरकरण के बाद के दलिये और उनकी स्थिति (नीचेकी)

मिथ्यात्व के जो दलिये उदय में आनेवाले है उन दलियों को जीव उपर के दलियों में अथवा नीचे के दलियों में डालता है, अतः बीच में खाली जगह निर्माण होती है ।

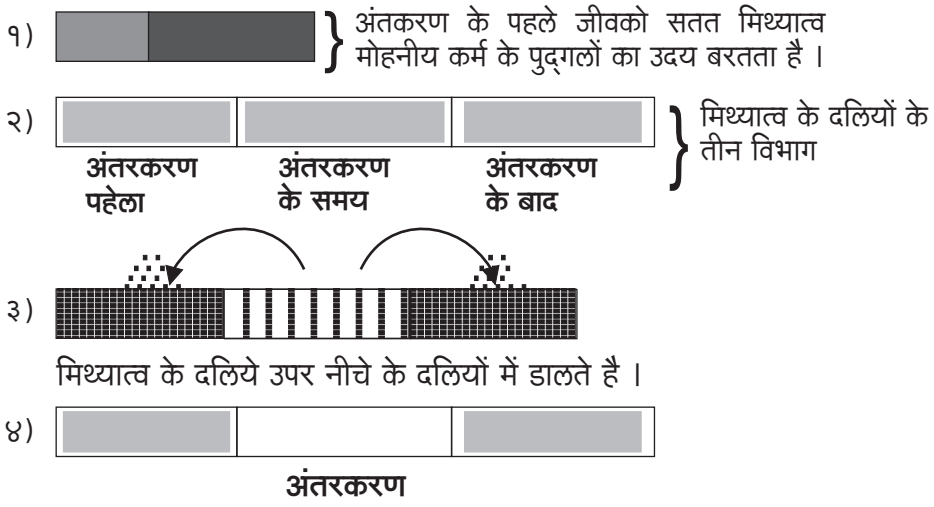

उपर निर्दिष्ट स्थिति में रहे हुए आत्मा को मिथ्यात्व मोहनीय का उदय चालु है, पर इस समय आत्मा उपर के और नीचे के दलियों की उदीरणा करते जाता है, दलियों का क्षय करते जाता है । उपर के दलियों की उदीरणा को **उदिरणा** कहते है, जब की नीचे के दलियों के उदिरणा को **''आगाल''** कहते है । उपर की स्थिति भोगते हुए जब अंतिम दो आवलिका बाकी रहती है, तब आगाल बंद हो जाता है और अंतिम आवलिका में उदिरणा भी बंद होती है ।

अंतिम आवलिका में भी जीव को मिथ्यात्व मोहनीय का उदय चालु रहता है, पर इस समय उसने अंतरकरण करने के लिये जो मिथ्यात्व के दलिये उपर और नीचे की स्थिति में डाले थे और उपशमित किये थे उन दलियों के सत्ता में ही तीन पुंज होते है -

१) शुद्ध पुंज २) अर्धशुद्ध पुंज और ३) अशुद्ध पुंज

उपर के स्थिति की अंतिम उदयावलिका पूर्ण होते ही बीच में साफ किये हुए अवकाश पडे हुए भाग में भोगने योग्य मिथ्यात्व के दलिये नहीं है । मिथ्यात्व के उदय में अवकाश-अंतर-पडने से अतः अब जीव को मिथ्यात्व का उदय नहीं है । आज तक मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से आत्मा का सम्यक्त्व गुण दबा हुआ था, वह

मिथ्यात्व मोहनीय के गैरहाजिरी में आत्मा का वह समकित गुण प्रगट होता है । यह अद्‌भूत अवस्था आत्मविकास की प्रभात है, यहाँ मिथ्यात्व मोहनीय क्षय नहीं है, पर उपशम होता है, उससे प्रथम सम्यक्त्व उपशम की प्राप्ति होती है ।

बीच में जो खाली अवकाश है वह अंतरकरण के समय अंतर्मुहूर्त रहता है । वह समय पूर्ण हुआ तो अंतकरण से प्राप्त हुआ उपशम सम्यक्त्व भी टिकता नहीं । फिर से नीचे की स्थिति के दलिकों का उदय चालू ही हो जाता है, पर अभी नीचे की स्थिति में केवल मिथ्यात्व के परमाणु (दलिये) नहीं है । यहाँ पर तीन पुंज हुए है -

मिथ्यात्व के तीन विभाग हुए है -

१) शुद्ध पुंज है वह सम्यक्त्व मोहनीय है । २) अर्धशुद्ध पुंज है, वह मिश्र मोहनीय है और ३) अशुद्ध पुंज है वह मिथ्यात्व मोहनीय है ।

अंतरकरण के पश्चात यदि शुद्ध पुंज याने सम्यक्त्व मोहनीय उदयमें आये तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है ।

अंतकरण के पश्चात यदि अर्धशुद्ध पुंज याने मिश्र मोहनीय उदय में आये तो **''क्षायोपशमिक सम्यक्त्व''** अथवा **''मिथ्यात्व''** प्राप्त होता है ।

अंतरकरण के अंत में यदि अशुद्ध पुंज अर्थात् मिथ्यात्व मोहनीय उदय में आये तो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर ज्यादा से ज्यादा छह आवलिका तक सास्वादन में रहकर अंत में मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त करता है ।

सम्यक्त्व प्राप्ति पर तीन मुसाफिरों का दृष्टांत देते है । तीन मित्र परदेश जाने के लिये निकले... चलते चलते शाम को एक जंगल में पहुंचे, वहाँ दो चोर आये, तीनों मुसाफिरों ने चोरों को देखा इन तीनों मे से एक मुसाफिर ने चोर को देखा और वह भयभीत होकर वहाँसे वापिस चला गया ।

दुसरा मुसाफिर चोरों से लडाइ करते हुए वहीं पर रहा ।

जब की तीसरा मुसाफिर चोरों पर जीत पाकर गंतव्य नगरी में पहुंच गया ।

दृष्टांत का उपनय समझाते हुए कहते है -

जंगल समान संसार-परिभ्रमण है, मुसाफिर तुल्य संसारी जीव जानना । जंगल के भयस्थान जैसी ग्रंथी - गांठ है और राग-द्वेष दो चोर है ।

तीन मुसाफिरों में से जो वापिस मुड गया वह यथा प्रवृत्तिकरण है । जो वहीं पर लडता रहा वह दुसरा मुसाफिर अपूर्वकरण जैसा है । चोरों को जीतकर जो मंजील पर पहुँचा उस तीसरे मुसाफिर जैसा तीसरा अनिवृत्तिकरण है । जहाँ वह जीव समकित पाकर अंत में अपनी मोक्षरुपी मंजील प्राप्त करता है ।

क्षायोपशमिकी दृष्टिः स्याज्ञरामरसंपदे । क्षायिकी तु भवे तत्र, त्रितुर्ये वा विमुक्तये ।।२२।।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी जीव मनुष्य अथवा देवगति में जाता है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति ६६ (छैंसठ) सागरोपम की है ।

क्षायिक सम्यक्त्वी जीव आयुष्य का बंध न पडा हो तो उसी भव में अथवा तीसरे-चौथे भव में मोक्ष जाता है ।

गोचरी

एक सेठ थे.... अपने मार्ग पर जाते हुए उनकी नजर बाजू के खेत पर पडी वहां कोई किसान बैलो को घूमाकर ज्वार धान्य डोडो में से अलग कर रहा था, ऐसे समय में बैल बारम्बार नीचे झुक झुक कर वो ज्वार धान्य खा रहे थे, इसलिये वो किसान बैलो को खूब मार रहा था, यह देखकर सेठ को बहुत दया आयी, उन्होंने किसान को पास बुलाकर कहा '' इन बैलो को क्यों मार रहे हो ? इन्हैं तू मार नहीं पर उनके मुँह पर जाली बांध दे, तो वे धान्य नहीं खायेंगे, और बराबर चलेंगे।''

बिन मांगे सलाह देकर सेठ तो चले गये परंतु सेठ की सलाह सुन किसान ने इस पर अमल किया, खुद का काम हो जाने के बाद भी बारह प्रहर तक बांधी हुई जाली छोडना वो किसान भूल गया, इसलीये बैलो को वो बारह प्रहर आहार, पानी का अंतराय हुआ, सेठ ने अज्ञानता से अंतराय कर्म का उपार्जन किया.....

कितने भवो के बाद सेठ जब तीर्थंकर आदिनाथ के भव में आये, दीक्षा ली तब ये कर्म उदय में आये, प्रभु अलग अलग नगर में, गांव में, गलियो-गलियो में विचरने लगे पर भिक्षाविधि से अज्ञान प्रजाजन प्रभु को क्या देना वो जानते नहीं, भिक्षा देते नहीं, बारह प्रहर तक बैलो को पडे अंतराय से बंधे कर्म प्रभु को बारह महिने से ज्यादा समय हैरान करते है, पर प्रभु समता से सहन करके इन कर्मो को क्षय करते है, कर्म क्षय होते ही श्रेयांस कुमार के हाथों प्रभु का सुझते इक्षुरस से पारणा होता है....

छोटी भूल की कितनी बडी सजा....!

हम सब तो जीवन में न जाने ऐसी कितनी ही भूले करते होंगे ? .... कैसी भयानक सजाये हमें भी भोगनी पडेगी ?...

इसिलिये परमकृपालु परमात्मा ने उनके साधु से ऐसी कोई भूल न हो जाय... कहीं कोई जबर्जस्त अंतराय कर्म न बंध जाय इसिलिये ही अद्‌भुत ऐसी गोचरी की विधि बतायी है....

निज हाथे बार उंघाडीने जी, पेसीअे नवि घरमांही,
बाल पशु भिक्षुक प्रमुखने संघट्टेजी, जइअे नहि घरमांही

साधु गोचरी वोहरने जाय और किसी श्रावक के घर के दरवाजे ऐसे ही अटके हुए हो तो भी साधु अपने हाथ से दरवाजा खोल कर अंदर प्रवेश न करे.... अपने कार्य कर रहे श्रावको की जीवन में अचानक अंतराय न पडे... रंग में भंग न करे... पर अंदर से द्वार खोलकर पधारो कहने में आये तभी घर में प्रवेश करे....

उसी तरह श्रावक के द्वार पर कुछ पाने की आशा से अन्य धर्म का साधु.... या भिक्षुक (भिखारी), छोटा बालक तथा पशु (गाय,कुत्ता वगैरह) आदि खडे हो तो जैन साधु उस श्रावक के घर में गोचरी लेने हेतु नहीं जाय, यदि साधु यह श्रावक के घर में जाय तो सारे साधु को दान देने में लग जायेंगे, बाहर खडे याचक निराश होंगे, वैसे ही वापस लौट जाय तो उनके अंतराय कर्म में साधु निमित्त बने, पर यदि जानकार श्रावक प्रथम द्वार पर खडे याचक एवं पशु आदि को योग्य दान देकर खुश करके बाद में साधु को पधारने विनंति करे तो साधु को घर में जाकर गोचरी लेने में दोष नहीं लगता।

वैसे ही जैन साधु का आचार है की खुद किसी श्रावक के यहां वोहरने जाय वहां पहले से कोई अन्य जैन साधु आहार पानी वोहरते हो तो भी वो अंदर प्रवेश न करे पर बाहर खडे रहे, साधु भगवंत योग्य आहार पानी

वोहरकर बाहर आवे फिर ही श्रावक के घर में प्रवेश करे । इस सामान्य नियम के पीछे भी आहार पानी में किसी को अंतरायभूत नहीं होने की ही भावना छुपी हुई है ।

कर्म बांधते वक्त यदि यथायोग्य सावधानी रखने में आये तो उसके कटु विपाक में से जीव बच सकता है, बस ! धर्म का कामकाज जीव को कर्म बांधने से अटकाना है । हमारी जीवन पद्धति यदि परमात्मा के बताये अनुसार हो जाय तो बहुत सारे कर्मो से हमारी आत्मा बच जाय, चलो प्रभु के बताये मार्ग पर चलने का प्रयास करे ।

मध्यान्ह का सूर्य पूर्ण ताप से तप रहा था, गरमी का प्रमाण बढ रहा था, वहां राजमार्ग पर मुनिराज एक घर से दूसरे घर भिक्षा के लिये घूम रहे थे, घूमते-घूमते धर्मघोषमुनि धर्मलाभ कहते हुए अभयसेन राजा के वरदत्त मंत्रीश्वर के घर पधारे, घर के सभ्य हर्षित हुए, हाथ जोडकर पधारने का निवेदन किया, मुनिराज ने घर में प्रवेश किया, मुनिराज ने अपना पात्र आगे धरा और घी-शक्कर डालकर बनायी खीर भाव से वोहराने को बेन आगे बढे, पर अचानक खीर वोहराने जाते खीर की एक बूंद नीचे पडी, मुनिराज कुछ भी लिये बिना वोहराये बिना घर में से निकल गये....

यह दृश्य देख रहे मंत्रीश्वर विचार में पड गये, एक बूंद नीचे पडी उसमें क्या हुआ ? मुनिराज इतनी छोटी सी बात में वापस क्यों चले ? मुनिराज को ऐसा नहीं करना चाहिये था, ऐसी विचारधारा चल रही थी की तभी वहां कोलाहल सुनायी दिया, मंत्रीश्वर ने वहां नजर की तो वे आश्चर्यमुग्ध बन गये, मुनिराज भिक्षा लिये बिना क्यों गये ? इसका रहस्य उजागर हो गया, परमात्मा शासन की सूक्ष्मता, गहनता, एवं दीर्घ दृष्टि उन्हें स्पर्श कर गयी, उनका मस्तक भाव से परमात्मा के, मुनिराज के चरणों में झुक गया, आइये हमे भी यह रहस्य जानने प्रयत्नशील बने....

मंत्रीश्वर ने नजर की तो उन्होंने देखा की खीर की पडी उस बूंद पर मक्खी बैठी थी, मक्खी को पकडने छिपकली आयी, छिपकली को खाने के लिये गिरगीट तैयार था, गिरगिट को पकडने बिल्ली दौडती आयी, बिल्ली पर बाहर से आये मेहमान का कुत्ता दौडा, बाहर के कुत्ते पर वहां बसते कुत्ते टूट पडे, कुत्तो को आपस में लडते देख उनके मालिक दौडते आये और वे एक दूसरे के साथ झगडने लगे, छोटी नजर आती बात कभी-कभी कितनी भयानक बन जाती है, यदि मुनिराज खीर की बूंद नीचे पडने के बाद भी गोचरी वोहरते तो ऐसे परिणाम में निमित्त बन जाते और न वोहरे तो ऐसे निमित्त से, ऐसे निमित्त के कारण बंधाते पाप से बच जाय....

इसीलिये साधु को गोचरी वोहरते वक्त श्रावक जागृत होना चाहिये, कोई भी वस्तु नीचे न गिरे इसका ख्याल रखना चाहिये, इसमें भी खास करके घी, तेल,दही एवं दूध के छीटे यदि जमीन पर पड जाय तो (पाटले या थाली के उपर पडे तो जयणा) साधु को उस घर से कुछ भी वोहराने का नहीं कल्पता ।

इसीलिये तो साधु -साध्वीजी भगवंत वोहरने आवे उनके पात्रे रखने को पाटला या थाली रखने में आती है । पाटला या थाली रखने से दूसरे भी अनेक लाभ होत है । साधु के पात्र का बहुमान बना रहता है, कोई गरम वस्तु वोहरी हो तो उससे जमीन पर के किसी सूक्ष्म जीव को किलामण (त्रास) होने से अटक जाते है । विधि अनुसार हो पाता है एवं साधु व श्रावक अन्य भी कितने दोषो से बच जाते है ।

घी, तेल, दही, दूध के अतिरिक्त भी अन्य आहार वोहराते वक्त भी ख्याल रखना चाहिये की अनाज के कण नीचे न गिरे, न बिखरे । इस गिरे हुए अनाज पर चीटियाँ वगैरह आये एवं उचित उपयोग न हो तो उनकी भी विराधना होने का संभव होता है ।

जयणा पालन में परमात्मा के शासन में बतायी आहार विधि सहायक बनती है । यदि श्रावक जयणा का जानकार न हो और साधु परमात्मा की बतायी विधि न सम्हाले तो साधु, जीव, विराधना में निमित्त बनकर दोषित होता है, साधु एवं श्रावक ये दोनों के जीवन को दोष रहित शुद्ध रखने हम गोचरी की विधि के जानकार बनकर दोष टालने प्रयत्नशील बने, यही कल्याण का पंथ है ।

जल,फल, जलण, कण, लूणशुं जी भेटतां जे दिये दान
ते कल्पे नहि साधुनेजी, वर्जवुं अन्न ने पान.....

गोचरी के लिये निकला साधु अत्यंत सावधान होता है, उसकी चकोर नजर चारो ओर कौन क्या कर रहा है उसका खबर लेती है.... ऐसा किसलिये ? स्वाभाविक मन में प्रश्न उठता है, पर उसका जवाब सहज है । शास्त्रकरो ने साधु को छः काय जीवो का मातापिता कहा है, छःकाय के जीवो के पीयर (मायके) की उपमा दी है, ये छःकाय के जीव यानि - १) पृथ्वीकाय २) अपकाय ३) तेऊकाय ४) वायुकाय ५) वनस्पतिकाय एवं ६) त्रसकाय ।

ये छः काय के जीवो के जो मातापिता बने हो उन्हें इन जीवो की कितनी चिंता करनी चाहिये ? इन जीवो को बचाने वक्त आने पर प्राणो की बाजी भी लगानी पडती है, तो ही उसका साधुपना शोभित हो उठता है ।

मासक्षमण के पारणे हेतु आहार लेने निकले मुनिराज के पात्र में कडवी तुंबडी की सब्जी आ गयी, गुरु भगवंत ने यह सब्जी खाने के लिये अयोग्य जान मुनिराज को विधिपूर्वक परठने जंगल में भेजा, पर सब्जी के रस की एक बूंद पर अनेक चीटियाँ आकर तडपने लगी, मुनि की आत्मा कांप उठी, यह सारी सब्जी परठने पर कितनी चीटियाँ हैरान होगी, शायद मर जायेगीं, मनि विचारों में खो गये, नहीं...नहीं... इतने जीवो को किलामणा (परेशानी) हो ऐसा काम मेरे से कैसे हो सकता है ? नहीं... नहीं..... मैं मर कर भी उन्हें जीवित रखूंगां, क्या माता अपने बालक के लिये त्याग नहीं करती, बलिदान नहीं देती, मैं ऐसा ही करुंगा ।

धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार; कीडीओनी करुणा, आणी दया रसाल ।
कडवा तुंबानो कीधो सघलो आहार, सर्वार्थसिद्धे पहोता, चवि लेशे भवपार ।

बस! ऐसी उत्कृष्ट भावना भायी.... पात्र उठाकर मुँह को लगाया, सारे जीवो को खमाया, चार शरणों को स्वीकार कर, पंचपरमेष्ठि के ध्यान में लीन बने, आयुष्य पूर्ण होने पर सर्वार्थसिद्ध देवलोक में गये, वहां से मानवभव पाकर, साधना कर सिद्धि को प्राप्त करेंगे ।

ऐसे साधु छः काय जीवो को जरा भी तकलीफ नहीं हो इसके लिये सावधान रहते है, गोचरी वोहरने को जाय वहां कोई भी वस्तु कच्चे पानी के साथ, अग्नि के साथ, फल आदि वनस्पति के साथ या कच्चे नमक के साथ स्पर्श की हुई हो, तो वो वस्तु साधु नहीं ले सकता, साधु के लिये वो त्याज्य बन जाती है, उसी तरह गोचरी वोहराने वाला भी इसमें से किसी वस्तु को स्पर्श किया हुआ हो तो उसके हाथ से आहार-पानी लेना साधु को नहीं कल्पता ।

उदाहरण के लिये तुम्हारे घर की सारी रसोई तैयार है, लकडे के डायनिंग टेबल पर रखी हुई हो, और उसी टेबल पर कच्चा पानी हो, कच्चे नमक डब्बी हो, नींबू या अन्य वनस्पति हो तो साधु से उस डायनिंग टेबल पर से कोई भी वस्तु नहीं ली जा सकती, लेना उसे कल्पता नहीं है, कारण लकडे के टेबल पर से एक वस्तु लेते हुए जरा भी आवाज होने पर या धक्का लगने पर उसकी तरंगे सचित वस्तु तक पहुँचती है, उसमें भय की भावना निर्मित होती है, उसी तरह स्पर्श होने पर बहुत किलामणा होती है । इन जीवों की किलामणा एवं भय की भावना वैसे ही हिंसा आदि में निमित्तभूत न बनने के लिये साधु को वो वस्तु लेना नहीं कल्पता ।

इसी कारण से सब्जी सुधारती बहन, अनाज साफ करती बहन, चुल्हे सिगडी पर काम करती बहन के हाथो से आहार-पानी लेना साधु को कल्पता नहीं है ।

साधु के धर्मलाभ देने पर साधु के निमित्त से लाईट चालू करना, बंद करना, उसी तरह टीव्ही, विडओ, पंखे वगैरह भी चालू या बंद करे तो भी साधु से उस घर से आहार-पानी नहीं लिया जा सकता, साधु वहाँ से वापस लौट जाता है, इसलीये साधु भगवंत पधारे तब लाईट, पंखा, टीव्ही वगैरह चालू हो तो चालू रखना, बंद हो तो बंद रखना पर साधु के आने के बाद चालू या बंद नहीं करना चाहिये ।